कविता : कल और आज

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
मैथिलीशरण गुप्त
माखनलाल चतुर्वेदी
जयशंकर 'प्रसाद'
सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
सुमित्रानंदन 'पंत'
महादेवी वर्मा
सुभद्राकुमारी चौहान
हरिवंशराय बच्चन
रामधारीसिंह 'दिनकर'
अज्ञेय
नागार्जुन
केदारनाथ अग्रवाल

भवानी प्रसाद मिश्र
शिवमंगल सिंह 'सुमन'
त्रिलोचन
सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
धूमिल
भगवानदास जैन
राजेश जोशी
द्वारका प्रसाद साँचीहर
उदय प्रकाश
धीरज वणकर
निर्मला पुतुल
सूरज बड़त्या
आशासिंह सिकरवार

संपादक

डॉ. गोवर्धन बंजारा

डॉ. धीरज वणकर

डॉ. सुरेश पटेल

KNR

कविता : कल और आज

संपादक

डॉ. गोवर्धन बंजारा

का. आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, श्री ह.का. आर्ट्स कॉलेज, अहमदाबाद

डॉ. धीरज वणकर

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, जीएलएस (सद्गुणा एण्ड बी.डी.) कॉलेज फॉर गर्ल्स, अहमदाबाद

डॉ. सुरेश पटेल

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज, नरोड़ा, अहमदाबाद

पार्श्व पब्लिकेशन : अहमदाबाद

संपादकीय

'कविता : कल और आज' भारतेन्दु से लेकर अधुनातन हिन्दी कवि की काव्य-यात्रा के विविध पड़ावों को केन्द्र में रखकर तैयार किया गया संकलन है । इसमें 26 काव्य-साधकों की सार-गर्भित कविताएँ संकलित हैं । इस विकास-यात्रा में भारतेन्दु युग (1850 से), द्विवेदी युग, छायावाद, हालावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, साठोत्तरी कविता, समकालीन कविता तथा विमर्श कविता (दलित, आदिवासी, नारी, 2022 तक) के विकास-क्रम को यहाँ ध्यान में रखा गया है । इस संकलन में भारतेन्दु से लेकर आशासिंह सिकरवार तक हिन्दी कविता की विकास-यात्रा अनेक आन्दोलनों और मोड़ों से गुजरती हुई आगे बढ़ती है । इस संकलन में गीत-ग़ज़लकार भगवानदास जैन और द्वारकाप्रसाद साँचीहर, दलित विमर्श के कवि धीरज वणकर और सूरज बड़त्या, आदिवासी विमर्श की कवयित्री निर्मला पुतुल तथा नारी विमर्श की कवयित्री आशासिंह सिकरवार की कविताएँ संकलित हैं । इन कविताओं से रूबरू होते हुए हम सहज ही अनुभव कर सकते हैं कि यह नवीन उन्मेष (उदय) की कविताएँ इस संकलन की काव्य-दृष्टि का विस्तार है । गुजरात के शीर्ष कवियों की काव्य-धारा का अनछुआ परिदृश्य इस संकलन में पूर्णता के साथ उपस्थित हो पाया है । यह संकलन ऐसे ही संघर्षशील कवियों के प्रदान को रेखांकित करता है ।

समकालीन कविता तथा विमर्श कविता के कवियों ने अपने समय के साथ अपने आपको भी बदला है । ये कवि समय के प्रवाह को पकड़ने का प्रयास करते हुए आम-आदमी की स्थितियों एवं परिस्थितियों को अपनी कविता में बखूबी 'अभिव्यक्त करते हैं । इन कवियों की कविता सही अर्थों में समय का तीव्र बोध कराती है । कविता का स्वर व्यंग्य एवं आक्रोश से भरा हुआ है । उनकी कविताएँ जन-सामान्य से गहरा जुड़ाव रखने में तथा वास्तविक स्थितियों का यथार्थ चित्रण करने में सक्षम हैं ।

'कविता : कल और आज' में ध्यान रखा गया है कि कालक्रम से प्रतिनिधि कविताओं का अधुनातन संकलन प्रस्तुत किया जा सके, जिससे छात्र आधुनिक हिन्दी कविता की विकास-यात्रा से परिचित हो सके। ये रचनाएँ छात्रों की काव्य-रूचि का संवर्धन करने में तो सक्षम हैं ही, सत्-असत् का एहसास कराना, भाषागत सज्जता बढ़ाना, नैतिक मूल्यों का विकास करना, प्रकृति और पर्यावरण के प्रति प्रेम जगाना, लोकशाही मूल्यों के प्रति आस्था जगाना, स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे की भावना बढ़ाना और "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना का विकास करने में भी उपादेय सिद्ध होगी।

छात्रों की सुविधार्थ कवियों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। जिन रचनाकारों की रचनाएँ यहाँ संकलित हैं, उनके प्रति हम विनम्र आभार प्रकट करते हैं। हम श्री बाबूभाई शाह, पार्श्व पब्लिकेशन अहमदाबाद के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं, जिन्होंने इस संग्रह को प्रकाशित करने का दायित्व निभाया। आशा करते हैं, यह संग्रह आधुनिक हिन्दी कविता के छात्रों एवं पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

01 मई, 2022 — **संपादक**
(गुजरात स्थापना दिवस)

18. धूमिल

[जन्म सन् 1936 : निधन सन् 1975]

धूमिल का पूरा नाम सुदामा पांडेय 'धूमिल' है। उनका जन्म खेवली, वाराणसी (उ. प्र.) में हुआ था । सुदामा पांडेय 'धूमिल' स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के ऐसे कवि हैं जिन्हें नयी कविता की वस्तु एवं शिल्प संबंधी यथास्थिति को तोड़ने के लिए सदैव याद किया जाता रहेगा। धूमिल की कविताएँ अकविता आंदोलन से प्रभावित अवश्य रही हैं; नकारात्मकता, सिनिसिज्म एवं यौन प्रतीकों का चित्रण धूमिल की कविता में सर्वत्र दिखाई देता है। यदि इतना ही होता तो धूमिल भी समय के साथ इतिहास में दर्ज हो जाते लेकिन उनकी कविता में साधारण मनुष्य के शोषण एवं अत्याचार के प्रति गहरी पीड़ा छिपी हुई है। अपनी व्यापक दृष्टि के द्वारा वे इसके पीछे के कारणों को भी अपनी विशिष्ट भाषा में अभिव्यक्त करने में सफल रहे हैं।

मुक्तिबोध की तरह असमय मृत्यु के शिकार होकर भी हिन्दी काव्य परिदृश्य में इन्होंने अपनी अलग पहचान बनायी है। नेहरू युग का जिसे मोहभंग कहा जाता है उसकी गहरी और विशिष्ट अनुभूति धूमिल की कविताओं से गुजरते हुए होती हैं।

शब्द को खोलकर उसमें नया अर्थ भरने का उनका दावा है। तत्सम शब्दों के साथ देशज शब्दों के सटीक प्रयोग उनकी उपलब्धि है, तो मुहावरे और कहावतों का प्रचुर प्रयोग भाषिक योग्यता में वृद्धि करता है। नाटकीयता, सपाट बयानी उनकी कथन भंगिमा के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं।

प्रमुख रचनाएँ

काव्य : 'संसद से सड़क तक', 'कल सुनना मुझे', 'सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र'।

पुरस्कार : 'कल सुनना मुझे' पर साहित्य अकादमी पुरस्कार।

1. मतदाता

पेट अपनी जगह रहेगा
सिर्फ पैर चलेंगे–
रोटी की ओर तीन कदम
दो कदम बिस्तर की ओर
हाँ, रास्ते में
एक जगह ऐसी भी आएगी
जब वह हड़ियाल चेहरा ठिठक कर सोचेगा
पहले कौन–
दायाँ या बायाँ !
फिर एक निर्णय लेना

जंगल में जाने के लिए
किसी सिगनल की ज़रूरत नहीं है
कम से कम वह इतना आज़ाद तो है ही
कि अपनी सोच के खिलाफ
पीठ पर बँधे हुए अपने हाथ को
अपने चेहरे के ठीक सामने खोले
और कहे 'ये मेरे हाथ हैं'
यहीं से नई जनगणना सार्थक होती है ।
और एक बालिग मुहावरा
ढर्रे की सार्वजनिकता के रूबरू होता है
"कहने का मतलब यह है कि भाइयो !
जनतन्त्र जनता से नहीं
घर की जंग से शुरू होता है"
और फिर पहली बार यह जानकर
वह खुश होगा कि मतपेटी में
मत-पत्र के साथ वह अपनी समझ नहीं डाल आया

हैं आज भी–
अगली लड़ाई के लिए उसके दाँत और नाखून
एक रोटी पर सुरक्षित हैं

•

2. घर में वापसी

मेरे घर में पाँच जोड़ी आँखें हैं
माँ की आँखें पड़ाव से पहले ही
तीर्थ-यात्रा की बस के
दो पंचर पहिये हैं।

पिता की आँखें–
लोहसाँय की ठंडी शलाखें हैं
बेटी की आँखें मन्दिर में दीवट पर
जलते घी के
दो दिये हैं।
पत्नी की आँखें नहीं
हाथ हैं, जो मुझे थामे हुए हैं

वैसे हम स्वजन हैं, करीब हैं
बीच की दीवार के दोनों ओर
क्योंकि हम पेशेवर गरीब हैं

रिश्ते हैं, लेकिन खुलते नहीं हैं
और हम अपने खून में इतना भी लोहा
नहीं पाते,
कि हम उससे एक ताली बनवाते
और भाषा के भुन्नासी ताले को खोलते,

रिश्तों को सोचते हुए
आपस में प्यार से बोलते,
कहते कि ये पिता हैं,
यह प्यारी माँ है, यह मेरी बेटी है
पत्नी को थोड़ा अलग
करते - तू मेरी
हमबिस्तर नहीं - मेरी
हमसफर है,
हम थोड़ा जोखिम उठाते
दीवार पर हाथ रखते और कहते
यह मेरा घर है।

•

3. लोहे का स्वाद

"शब्द किस तरह
कविता बनते हैं
इसे देखो
अक्षरों के बीच गिरे हुए,
आदमी को पढ़ो
क्या तुमने सुना कि यह
लोहे की आवाज है या
मिट्टी में गिरे हुए खून
का रंग।"
लोहे का स्वाद
लोहार से मत पूछो
उस घोड़े से पूछो
जिसके मुँह में लगाम है।

•

20. राजेश जोशी

[जन्म सन् : 1946]

राजेश जोशी समकालीन कविता के प्रमुख हस्ताक्षरों में से एक हैं। उनका जन्म नरसिंहगढ़ मध्यप्रदेश में हुआ था। उन्होंने कविता को साधारण मनुष्य के बहुत नजदीक लाने का प्रयत्न किया है। राजेश जोशी ऐसे कवियों में हैं जिनकी कविताएँ जीवनधर्मी हैं; जहाँ मनुष्य, लोक, समाज और समूचे विश्व के तमाम सरोकारों को कवि महसूस करता है, अभिव्यक्त करता है। राजेश जोशी की कविता मनुष्य की अपने चारों ओर के संसार में मूलभूत दिलचस्पी की कविता है। उनकी कविता में विचारधारा एवं एन्द्रिक संवेदन देखने को मिलते हैं। उसमें अपने संसार को लेकर कुछ जिज्ञासाएँ हैं। इन जिज्ञासाओं को उसकी समस्त ऐन्द्रियता में चित्रित करने के लिए राजेश जोशी की कविताओं में बचपन और उसके आस-पास का संसार बार-बार रूपायित होता है।

मुक्तिबोध, नागार्जुन और केदारनाथ सिंह की परम्परा का पालन करते हुए राजेश जोशी ने कविता क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बनायी है। उनकी कविताओं में मुक्तिबोध की मनुष्य जीवन की पहचान और तलाश है। नागार्जुन के देहाती और राजनीतिक जीवन के दृश्य-परिदृश्य भी हैं तो केदारनाथ सिंह के कृषक जीवन का समर्थन भी है। राजेश जोशी एक ऐसे कवि हैं जिनकी कविता में नाटकीयता है, गेयता है, संगीत है, गद्य है और इन सब में गुँथा हुआ मानवीय जीवन का सच है।

प्रमुख रचनाएँ

काव्य : 'समरगाथा' (लम्बी कविता), 'एक दिन बोलेंगे पेड़', 'मिट्टी का चेहरा', 'नेपथ्य में हँसी', 'दो पंक्तियों के बीच'

कहानी : सोमवार और अन्य कहानियाँ, कपिल का पेड़

नाटक : जादू जंगल, अच्छे आदमी, टंकारा का गाना

पुरस्कार : शमशेर सम्मान, शिखर सम्मान, माखनलाल चतुर्वेदी पुरस्कार, 'दो पंक्तियों के बीच' संग्रह पर साहित्य अकादमी पुरस्कार

1. प्लेटफ़ॉर्म पर

आवारगी के उन दिनों में जब देर रात लौटने पर
बंद हो जाते थे घरों के दरवाज़े
गुज़ारी हमने कई-कई रातें प्लेटफ़ॉर्म पर चहलक़दमी करते हुए
देर रात जब सुनसान होते जाते हैं प्लेटफ़ॉर्म और
बहुत कम गुज़रती हैं रेलगाड़ियाँ
दूर आसमान में टहलता रहता है बाँका चाँद !
ख़ाली पटरियों पर बीच-बीच में शंटिंग करते रहते हैं इंजन
ठंडी होती रात के सन्नाटे में गूँजती है
इंजन की तेज़ सीटी और पहियों का संगीत
ऊँघते हुए चाय वाले, टिकिट कलेक्टर, इंजन ड्राइवर, गार्ड और
पटरियों की देखभाल करने वाले मज़दूर हाथ में लालटेनें लिए
अलग-अलग कोनों में खड़े बतियाते हैं
उनकी फुसफुसाहटों और इक्का-दुक्का यात्रियों के बीच
उस छोटे से स्टेशन पर मटरगश्ती करते
गुज़ारी हमने कई-कई रातें
हर दिन लंबी होती सड़कों और बड़े होते शहरों में अब
कम होता जा रहा है चलन किसी को
लेने आने या छोड़ने जाने का
अब तो पूरी शिद्दत से कोई लड़ता भी नहीं
बहुत ख़ामोशी से चलती है ठंडी कटुता की
दुधारी छुरी
उदासी बढ़ रही है क़स्बों में और शहरों में उदासीनता
आवारगी करते और व्यर्थ भटकते प्लेटफ़ॉर्म पर
हर आती जाती ट्रेन की खिड़कियों से झाँकते लोगों को
हिलाए हमने हाथ
दूर तक तलाशे होंगे उन लोगों ने
हमारे अपरिचित चेहरों में
चेहरे अपने स्वजनों के

दिनों दिन ठंडी होती जाती मन में बची आँच ने
कुछ पल को कुरेदा होगा ज़रूर
कुछ लोगों का मन ।

•

2. उस प्लंबर का नाम क्या है

मैं दुनिया के कई तानाशाहों की जीवनियाँ पढ़ चुका हूँ
कई खूँख़ार हत्यारों के बारे में भी जानता हूँ बहुत कुछ
घोटालों और यौन प्रकरणों में चर्चित हुए
कई उच्च अधिकारियों के बारे में तो बता सकता हूँ
ढेर सारी अंतरंग बातें

और निहायत ही नाकारा क़िस्म के राजनीतिज्ञों के बारे में
घंटे भर तक बोल सकता हूँ धाराप्रवाह
लेकिन घंटे भर से कोशिश कर रहा हूँ
पर याद नहीं आ रहा है इस वक़्त उस प्लंबर का नाम
जो कई बार आ चुका है हमारी पाइप लाइन में
अक्सर हो जाने वाली गड़बड़ी को ठीक करने
वह कहाँ रहता है, कहाँ है उसके मिलने का ठीहा
कुछ भी याद नहीं
उसके परिवार के बारे में तो ख़ैर...

हैरत है ! मैं बुरे लोगों के बारे में कितना कुछ जानता हूँ
और उनसे भी ज़्यादा बुरों के बारे में, तो कुछ और ज़्यादा
जबकि पाइप लाइन में आई किसी गड़बड़ी को
किसी तानाशाह ने कभी ठीक किया हो
इसका ज़िक्र उसकी जीवनी में नहीं मिलता

ऐसे वक़्त में हमेशा स्त्रियाँ ही मदद कर सकती हैं
यह थोड़ा अजीब ज़रुर लगेगा लेकिन यही सच है

कि स्त्रियाँ ही उन लोगों के बारे में सबसे ज़्यादा जानती हैं
जो आड़े वक़्त में काम आते हैं
जो जीवन की छोटी-छोटी गड़बड़ियों को
दुरुस्त करने का हुनर जानते हैं
पत्नी जानती थी कि चार दिन पहले
जमादारिन के यहाँ बच्चा हुआ है
वह उसके बच्चे के लिए हमारी बेटी के छुटपन के कपड़े
निकाल रही थी उस वक़्त

जब थक हारकर मैंने उसे आवाज़ लगाई
सुनो... उस प्लंबर का नाम क्या है ?

•

3. बच्चे काम पर जा रहे हैं

कोहरे से ढँकी सड़क पर बच्चे काम पर जा रहे हैं
सुबह सुबह

बच्चे काम पर जा रहे हैं
हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह
भयानक है इसे विवरण की तरह लिखा जाना
लिखा जाना चाहिए इसे सवाल की तरह
काम पर क्यों जा रहे हैं बच्चे ?
क्या अंतरिक्ष में गिर गई हैं सारी गेंदें
क्या दीमकों ने खा लिया हैं
सारी रंग बिरंगी किताबों को
क्या काले पहाड़ के नीचे दब गए हैं सारे खिलौने
क्या किसी भूकंप में ढह गई हैं
सारे मदरसों की इमारतें
क्या सारे मैदान, सारे बगीचे और घरों के आँगन

22. उदय प्रकाश

[जन्म सन् : 1952]

उदय प्रकाश का जन्म सीतापुर, जिला शहडोल (म. प्र.) में हुआ था। वे समकालीन कविता के ऐसे समर्थ कवि हैं जिन्होंने प्रगतिशील कविता की विरासत को लेकर अपनी कविता को संभव बनाया है। यहाँ सरल, सहज अभिव्यक्ति भी है और प्रखर सामाजिक चेतना भी। लेकिन अधिकांश कविताओं में आक्रोश एवं आक्रात्मकता का स्वर मंद है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वैचारिक धरातल पर उदय प्रकाश जन साधारण या उपेक्षितों के पक्षधर नहीं हैं। उनके सामाजिक सरोकार बहुत स्पष्ट हैं। आठवें दशक के उत्तरार्द्ध में आक्रोश का स्थान जीवन-राग और लोकधर्मिता ने ले लिया था। उदय प्रकाश ने भी अपने पहले संग्रह में अपने घर-परिवार, पास-पड़ोस के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किए। 'नींव की ईंट हो तुम दीदी', 'पिता' जैसी कविताएँ इस संदर्भ में देखी जा सकती हैं। लेकिन इन आत्मीय चित्रों के साथ उनकी व्यापक जीवन दृष्टि का अहसास भी कविताओं से गुजरते हुए हो जाता है। भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार से सम्मानित संवाद शैली की छोटी कविता 'तिब्बत' में व्यापक संदर्भों को मूर्त कर पाना उसी के लिए संभव है, जिसने काव्य दक्षता हासिल कर ली है। अपनी परवर्ती कविताओं में उदय प्रकाश काव्य मुहावरा बदलने लगते हैं।

प्रमुख रचनाएँ

कविता संग्रह	:	सुनो कारीगर, अबूतर-कबूतर, रात में हारमोनियम, कवि ने कहा।
कहानी संग्रह	:	दरियाई घोड़ा, तिरिछ, पॉल गोमरा का स्कूटर, मोहनदास।
साक्षात्कार	:	तेरी मेरी बात।
पुरस्कार	:	भारत भूषण अग्रवाल, मुक्तिबोध, 'मोहनदास' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार।

1. तीली

सबसे सरल है
सबसे मुश्किल और महान् चीज़ों को नष्ट करना

सिर्फ़ एक तीली
इतिहास की सबसे प्राचीन और दुर्लभ
पांडुलिपि को राख बना देने के लिए

एक तीली
अब तक पढ़ी न जा सकी, लुप्त सभ्यताओं की
अज्ञात लिपियों को राख
किसी मिथक-नायक के शौर्य और शोक को राख
किसी समाज के स्मृति-कोष, किसी समुदाय के प्राक्‌बिंबों को राख
किसी समूह की अस्मिता
किसी ग़रीब का घर
किसी स्त्री की जवान देह को राख

किसी आस्था के ईश्वर
किसी धर्म के पैगंबर को राख

सिर्फ़ एक तीली चाहिए
किसी चिंपाजी, किसी गुंडे या गुरिल्ला की
एक ज़रा सी हरकत

एक रुपये का चाकू, बीस पैसे की ब्लेड,
दो पैसे की तीली
या किसी अपराधी का मामूली सा पराक्रम
जरूरत से कुछ ज्यादा ही है
मोनालिसा की रहस्यपूर्ण उस हँसी की हत्या के लिए

डेढ़ किलो का मटिया लोहे का एक घन
स्थापत्य के इतिहास में संगमरमर के सबसे
ज़हीन और सबसे अद्भुत गुंबद को मलबे में बदलने के लिए

एक अँधेरा कोना
एक ज़रा-सी फुर्ती

डेढ़ औंस का ढला हुआ सीसा
किसी कवि, किसी संन्यासी, किसी सूफ़ी, किसी मुँहफट जोकर,
किसी विरोधी को
राजधानी की सड़क पर सदा के लिए
चुप और ठंडा करने के लिए

सबसे संक्षिप्त और सबसे सरल है
सबसे लंबी और जटिल प्रक्रिया में बनी
चीज़ों को ख़त्म करना ।

•

2. दो हाथियों की लड़ाई

दो हाथियों का
लड़ना
सिर्फ़ दो हाथियों के समुदाय से
संबंध नहीं रखता।

दो हाथियों की लड़ाई में
सबसे ज्यादा कुचली जाती है
घास, जिसका
हाथियों के समूचे कुनबे से
कुछ भी लेना-देना नहीं।

जंगल से भूखी लौट आती है
गाय
और भूखा सो जाता है
घर में बच्चा
चार दाँतों और आठ पैरों द्वारा
सबसे ज्यादा घायल होती है
बच्चे की नींद
सबसे अधिक असुरक्षित होता है
हमारा भविष्य।

दो हाथियों की लड़ाई में
सबसे ज्यादा
टूटते हैं पेड़
सबसे ज्यादा मरती हैं
चिड़ियाँ,
जिनका हाथियों के पूरे कबीले से कुछ भी
लेना-देना नहीं।
दो हाथियों की
लड़ाई को
हाथियों से ज्यादा
सहता है जंगल।

और इस लड़ाई में
जितने घाव बनते हैं
हाथियों के उन्मत्त शरीरों पर
उससे कहीं ज्यादा
गहरे घाव
बनते हैं जंगल और समय
की छाती पर।

जैसे भी हो
दो हाथियों को
लड़ने से रोकना चाहिए।

•

3. मरना

आदमी
मरने के बाद
कुछ नहीं सोचता।

आदमी
मरने के बाद
कुछ नहीं बोलता।

कुछ नहीं सोचने
और कुछ नहीं बोलने पर
आदमी
मर जाता है।

•

4. मालिक, आप नाहक नाराज़ हैं

मालिक, आखिर हवा तो आपके कहने से नहीं चलती
धूप का क्या करेंगे आप जो गिरेगी ही
आपकी बरौनियों में
आपके ऊपर चढ़कर फुदकेंगी ही
रोशनी की नटखट, चौकन्नी गिलहरियाँ
रंगों पर तो बस नहीं है आपका
आप जब भी निहारेंगे
वे खिलखिलाएँगे आपके खून में

19. भगवानदास जैन

[जन्म सन् 1938]

भगवानदास जैन का जन्म बुन्देल खण्ड के सागर (म.प्र.) में हुआ। कई वर्ष पहले बुन्देलखंड से अहमदाबाद (गुजरात) आकर बसे। प्रो. भगवान दास जैन गुजरात के वर्तमान हिन्दी-गज़लकारों में अग्रगण्य हैं। इनके ग़ज़ल-संग्रह 'हर सिम्त तुम ही तुम' में अब तक लिखी हुई ग़ज़लों में से चुनी हुई प्रतिनिधि-ग़ज़लें तथा कुछ नई ग़ज़लें सम्मिलित हैं। देश के विभिन्न राज्यों से प्रकाशित लगभग दो दर्जन सहयोगी-प्रकाशनों में आपकी रचनाएँ सम्मिलित हैं और अनेक पत्रिकाओं के आधा दर्जन से अधिक ग़ज़ल-संग्रहों में आपकी ग़ज़लों को सम्मानपूर्ण स्थान दिया गया है। आपकी ग़ज़लों में समाज के अनगिनत बेबस, बेकस और मज़लूमों की मनोदशा को सहज अभिव्यक्ति प्राप्त हुआ है। जैन की ग़ज़लों के केन्द्र में केवल आदमी है, वह आदमी जो अभावग्रस्त है और उत्पीड़ित है। आपकी ग़ज़लों की भाषा न अत्याधिक संस्कृतनिष्ठ है और न अरबी-फ़ारसी शब्द बहुल उर्दू, बल्कि वह आम बोलचाल वाली हिन्दुस्तानी ज़बान है। जिसमें उर्दू की रवानगी और ताजगी तथा संस्कृत की शिष्टता एवं उदात्तता है।

प्रमुख रचनाएँ

कविता : रोशनी की तलाश, आस्था के स्वर

ग़ज़ल : जिंदा है आईना, कटघरे में हूँ, देख नज़ारे नई सदी के, जिंदगी के बावजूद, नई परवाज़

अनुवाद : दो दर्जन से अधिक विविध विषयों के ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद

पुरस्कार : 'ज़िंदा है आईना' गुज. हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कार, साहित्यालोक अलंकार सम्मान, साहित्य मण्डल नाथद्वारा द्वारा 'साहित्य सुधाकर' से सम्मानित।

1. हम अपने ज़ख़्म कैसे छिपाएँ जहाँपनाह

हम अपने जख़्म कैसे छिपाएँ जहाँपनाह ।
सपनों की लाश किसको दिखाएँ जहाँपनाह ।

कहते हैं जिसको ज़िंदगी बाँदी है आपकी,
रूठी है हमसे कैसे मनाएँ जहाँपनाह ।

अब आदमी के दिल से ही महरूम आप हैं,
क्या ख़ाक अपना दर्द सुनाएँ जहाँपनाह ।

क्यूँ मुल्क में हैं आज भी ऐसे तमाम लोग,
अख़बार ही जो ओढ़ें-बिछाएँ जहाँपनाह ।

हम रौशनी के वास्ते बस्ती में कब तलक,
अपने दिलों को यूँ ही जलाएँ जहाँपनाह ।

इस बात के सुबूत हैं रुख़्सार आपके,
खूँख़्वार आपकी हैं अदाएँ जहाँपनाह ।

सदियों की नींद आपकी टूटेगी हम अगर,
बुनियाद को ही मिलके हिलाएँ जहाँपनाह ।

सर हों कलम हमारे तो पर्वाह अब नहीं,
पर अपना ताज आप बचाएँ जहाँपनाह ।

हर सिम्त एक आग है रहिएगा होशियार,
कुछ गर्म आजकल हैं हवाएँ जहाँपनाह ।

•

2. वर्षा-गीत

रिम झिम - रिम झिम करती आई
गाँव-गली में बरखा-रानी ।

ग्रीष्मातप से व्याकुल जन-मन,
फिर मेघों का गर्जन-तर्जन ।
नभ की आँखों से फिर झर-झर,
अमृत जैसे जल का वर्षण ।

लहराती सर्वत्र मनोरम,
प्रकृति-नटी की चूनर धानी ।

मन-भावन सावन आवन पर,
पड़ गए झूले डाली-डाली ।
वर्षा-गीत छंद तुलसी के,
गाते कृषक और वनमाली ।

गली-गली, पनघट, चौबारे,
बचपन झूमे मस्त जवानी ।

लो सुधियों के घन घिर आए,
आँखें सजल हुईं बिरहिन की ।
बिन साजन जल की बौछारें
लगतीं फुंकारें नागिन की ।

जीर्ण-शीर्ण छाजन से टप-टप,
टपक रहा कुटिया में पानी ।

बरखा कहती है कर दूँगी,
धरती को मैं पानी-पानी ।
पर सूरज धमकाता जग को,
देखो अब मेरी मनमानी ।

बन्धु सहेजो 'जीवन' वर्ना,
जीवन दूभर है बिन पानी ।

•

21. द्वारका प्रसाद साँचीहर

[जन्म सन् 1949]

द्वारका प्रसाद साँचीहर का जन्म सन् 19 अप्रैल, 1949 में राजस्थान के काँकरोली में हुआ था । डॉ. द्वारका प्रसाद साँचीहर पश्चिमांचल के प्रतिष्ठित एवं लोकप्रिय सुकंठ गीत-गज़लकार, तटस्थ समीक्षक एवं अच्छे अनुवादक हैं । इन्होंने 'छायावादोत्तर हिन्दी कविता : प्रवृत्ति एवं शिल्प' विषय पर महत्त्वपूर्ण शोधकार्य किया है। एम.पी. आर्ट्स कॉलेज, अहमदाबाद में हिन्दी विभागाध्यक्ष के रूप में सेवानिवृत्त हुए हैं । ये कबीर और निराला की तरह अल्हड़पन, फक्कड़पन और घरफूँक मस्ती वाला सहज-सरल व्यक्तित्व के धनी हैं । दरअसल साँचीहर को नई कविता की धारा के कवि कह सकते हैं, क्योंकि नई कविता के बिम्ब, प्रतीक, दृष्टांत एवं नये-नये शब्द निर्माण इनकी कविता की विशेषता है । कवि की संवेदना जितनी सच्ची है, उतनी ही गहरी भी है । गीतकार के रूप में इन्हें विशेष ख्याति मिली है । आपके गीत मन-बुद्धि और प्राणों को आलोड़ित-विलोड़ित कर देते हैं । साँचीहरजी राजस्थान-गुजरात की साझा सांस्कृतिक विरासत को अपनी कलम से पोषते रहे हैं । 'गीत रजनी गंधा के' के प्रकाशन के साथ ही अखिल भारतीय स्तर पर कवि सम्मेलनों में आपके शब्द और स्वर की जुगलबंदी ने आपको खूब सराहा ।

प्रमुख रचनाएँ

काव्य/ग़ज़ल : 'लीटी लग लंबाया', 'गीत रंजनीगंधा के', 'अवाक् के चाक पर', 'आँचल के मोती' ।

समीक्षा : छायावादी कविता, नयी कविता और धर्मवीर भारती ।

अनुवाद : 'भस्मासुर' (चिनु मोदी का रेडियो नाटक), 'औरंगजेब' (चिनु मोदी का नाटक) ।

पुरस्कार : 'गीत रजनीगंधा के' और 'अवाक् के चाक पर' हिन्दी साहित्य अकादमी पुरस्कार ।

1. अवाक् के चाक पर

कुछ कह सकता
तो हवा में मुक्के क्यों मारता
कलाइयाँ क्यों काटता
दांत क्यों भींचता
पर कुछ भी न कर सकने की
न सह सकने की
और न रह सकने की स्थिति में
धरती नहीं फटती
आकाश फट जाता है
और आखिर काले अक्षरों में
चाँदनी लिखकर कहाँ तक पियूँ
कहाँ तक जियूँ
यह ब्लोटिंग-सा वातावरण
फैल तो बहुत गई
सिकुड़ना
स्याही के बस की बात नहीं
पर कलम चलती है
तो सब कुछ उतरता है
पर फिर
'फिर' का गुब्बारा हवा में फूट जाता है
हवा में कोई विस्फोट की तरंग नहीं
बस बार-बार
मैं अवाक् के चाक पर
गीली-मिट्टी-सा घूमता हूँ
रीते घड़े-सा उतरता हूँ
सोचता हूँ
कि बवण्डर उठेगा

तो मुट्ठियों में भरूँगा, पर कब
'कब' का प्रश्न होठों पर आकर तुतला जाता है
फिर लगता है...!

('अवाक् के चाक पर' से)

•

2. आज़ादी की लाश

दूधमुँहे बच्चे-सा रोता मन का एक सपन ।
आज़ादी की लाश माँगती फूलों-बुना क़फ़न ॥
कितने कान्हा भटक रहे हैं लेकर हाथ कटोरा,
मात यशोदा की आँखों के चंदा और चकोरा;
दूध नहीं रूखी-सूखी रोटी से भूख मिटाते;
या गुदड़ी में सिसक-सुबक प्यासे-प्यासे मर जाते;
उनकी अँधियारी आँखों में उजले स्वप्न दफ़न ।
फुटपाथों ने चूड़ी तोड़ी ले शहीद का नाम,
अब बबूल पर सोनचिरैया बैठी हो बदनाम;
फूल-फूल के दिल मुरझाये, शाख जली चंदन की,
पत्ता-पत्ता कजलाया और राख बची नंदन की;
फटा हुआ पतझड़ का घूँघट ओढ़े आज चमन ।
चाँदी शीशे सोने की दीवारें आज खड़ी हैं,
जिनके नीचे हर दीन हीन की नंगी लाश गड़ी हैं;
रामराज्य है कैसा जिसमें साड़ी बेचे सीता,
राम मरे, लक्ष्मण मूर्छित हैं, काला रावण जीता;
गीता-रामायण-कुरान को रक्खा कहाँ रहन ?
राँझा-हीर बने बस किस्से नहीं प्यार पलता है,
आज अयोध्या की गलियों में बस, पेरिस चलता है
माँ के दूध पिलाने के प्याले भी बिकते जाते,
चील और कौए बन मानव ही उन पर मँडराते,
कहो तुम्हीं क्या राख दबी भड़केगी नहीं अगन ?

शाम ढली और चाँद नहीं है यह कैसा अंधेर ?
शायद पूनम को मावस ने आज लिया है घेर,
किरणों की बैसाखी टूटी युग चल पाये कैसे ?
जबकि देश है लूला-लँगडा मंजिल पाये कैसे ?
छिपी रही पर अब न छिपेगी रवि की नई किरन !

('गीत रजनीगंधा के' से)

•

3. नहीं पशु-सा पाश चाहिए

नहीं पशु-सा पाश चाहिए ।
नारी को विश्वास चाहिए ।

जिससे दोनों पँख खोलकर उड़े सुबह और शाम,
चोंच से दाना चुगे-चुगाए नीड़ में ले विश्राम,
सतरंगी आकाश चाहिए ।
नारी को विश्वास चाहिए ।

आखिर इसकी रुनझुन-रुनझुन रौनक है हर घर की,
जैसे पति की मीठी-मीठी गुनगुन गूंजे स्वर की,
खिला मधुर मधुमास चाहिए ।
नारी को विश्वास चाहिए ।

यही यशोदा-कौशल्या, जीजाबाई है सबकी,
टिमटिम टिमटिम तारे इसके शोभा श्यामल नभ की,
ममतामय सहवास चाहिए ।
नारी को विश्वास चाहिए ।

('आँचल के मोती' से)

•

25. सूरज बड़त्या

[जन्म सन् 1974]

आधुनिक साहित्यिक विमर्श में एक सार्थक योगदान देने वाले सूरज बड़त्या का जन्म दिल्ली की एक पुनर्वास बस्ती सीलम पुर (ब्रह्मपुरी) पूर्वी दिल्ली में हुआ। इनके पिता बिजली विभाग में साधारण मजदूर थे। आर्थिक संकटों को झेलते हुए तीन भाई बहनों में केवल ये ही उच्च शिक्षा (पीएच.डी.) तक पहुँच पाये। इनकी प्राथमिक शिक्षा नांगलोई स्कूल एवम् माध्यमिक शिक्षा नांगलोई के ही अन्य स्कूल में हुई। स्नातक इतिहास दिल्ली युनिवर्सिटी के शिवाजी कॉलेज एवम् स्नातकोत्तर हिंदी में हिंदू कॉलेज दिल्ली युनिवर्सिटी से पूरी की। दिल्ली युनिवर्सिटी से सूरज बड़त्या को स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ था।

सूरज बड़त्या के लेखकीय जीवन का प्रारंभ सन् 1990 में कविता लेखन से शुरू हुआ जब वे दसवीं कक्षा के छात्र थे। स्नातक के दौरान इनकी काव्य प्रतिभा को पहचानकर इन्हें कॉलेज की पत्रिका का संपादक बनाया गया। हिंदी की महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में इनकी कहानियाँ लेख, कविताएँ प्रकाशित हुई हैं।

सूरज बड़त्या आगरा स्थित दयालबाग़ में हिंदी के प्रोफ़ेसर हैं। जापान स्थित 'तोक्यो युनिवर्सिटी ऑफ फोरेन स्टडीज 'तोक्यो में विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में जापानी स्टूडेंट्स को हिन्दी में अध्ययन करवाया।

प्रमुख रचनाएँ

कविता : अन्याय का गणित

कहानी : कामरेड का बक्सा

आलोचना : सत्ता संस्कृति और दलित सौंदर्यशास्त्र, दलित साहित्य पक्ष-प्रतिपक्ष

संपादन : संघर्ष, युद्धरत आदमी, दलित अस्मिता, भारतीय दलित कविताएँ

पुरस्कार : मैथिलीशरण गुप्त अवॉर्ड, युवा कहानी अवॉर्ड, अंतर्राष्ट्रीय कहानी पुरस्कार (अमेरिका-गुज्जी कहानी के लिए)।

1. अयम्मा

अयम्मा,
एक बात पूछता हूँ तुमसे आज
कितनी सदियाँ बीतती रही हैं
समय करवट लेता रहा है
इतिहास के स्याह रंग
गवाह हैं
तुम्हारी हाड़-तोड़ मेहनत का
समय बदला, दुनिया के रंग बदले
नयी तकनीकें आयीं और
बेहतर दुनिया बनाने की घोषणाएं होती रहीं
नीतियाँ बनती रहीं
लेकिन
उन घोषणाओं और नीतियों में
तुम
कहाँ थी अयम्मा ?
तुम्हारे हाथ की झाड़ू
और
माथे पर मल की टोकरी अयम्मा
क्यों नहीं छूटी ?

तुमने, तुमसे पहले तुम्हारे पूर्वजों ने
असभ्य इन्सानों, गाँवों, शहरों का मल उठाकर
श्रम की गरिमा की चाहत
और
इन्सान हो सकने का सपना पाला
चल बसे
और गुम होते चले गये

क्या तुम जानती हो, तुम्हारे बाद तुम्हारे बच्चे
कहाँ होंगे इस सिस्टम में,
आने वाली पीढ़ियों के लिए
क्या तुम सपने देखती हो अयम्मा ?

अयम्मा,
सच-सच बताना बेबाकी और हिम्मत से
क्या तुम वाकई नहीं जानती
ये असभ्य इन्सानी नस्ल और समाज
तुम्हारे श्रम
सपनों
और चाहतों के हत्यारे हैं ?

क्या तुम्हें याद है अयम्मा
जब पहली बार
तुम्हारी नन्हीं उँगलियों ने
झाड़ू और टोकरी को थामा था
उम्र क्या थी तुम्हारी ?
इतिहास के उस खुरदरे समय में
तुम्हारी नन्हीं-नन्हीं उँगलियाँ
माँ के साथ-साथ झाड़ू लगाते छिल गयी थीं
उसी खुरदरे समय में
ये असभ्य इन्सानी नस्ल
तुम्हारे माथे पर टोकरी देखकर
नाक-भौं सिकोड़ते हुए भी
अचंभित हो जाया करती थी
तुम्हारी माँ ने तो
कभी नहीं चाहा था अयम्मा
कि तुम भी मल उठाओ
उसने तो तुम्हारे हाथ में

कलम देनी चाही थी
पर वह ऐसा कर नहीं पायी
इसके लिए
क्या तुम्हारी माँ दोषी है अयम्मा
या फिर ये समाज ही ऐसा था
जिसने
कलम की जगह झाड़ू
और
बस्ते की जगह टोकरी को
तुम्हारे हिस्से की तक़दीर बना डाला
इस समाज ने ही
गाँवों और शहरों की गन्दी बस्तियों
और मल-मूत्र के पेशे को
पूर्वजों की विरासत कहकर
तुम्हारे लिए ऐसी
पाठशाला बनाई
जहाँ कलम नहीं थी
अक्षर नहीं थे, व्याकरण नहीं था
जहाँ सिर्फ़ जुगुप्सा से बजबजाती बारहखड़ी
और घृणा से भरी हुई भाषा थी
उत्पीड़न का एक अनकहा अनुशासन था
तुमने वहीं सीखा था श्रम का ऐसा पाठ
जिसकी क़द्र करने वाला
कम से कम इस दुनिया का
कोई भी ग़ैरदलित
मार्क्स नहीं बन सकता था

अयम्मा
क्या तुम्हें याद है तरुणाई के दिन
तुम्हारे तांबई चेहरे से

लावण्य टपकता था
बसंत की कोंपलें फूटती थीं
और तुम्हारी आँखों में
सपनों का मुक्त आकाश चमकता था
श्रम ने गढ़ा था तुम्हारे शरीर को
जहाँ बाघिन की सी गर्वीली चाल में
हिरनी की चपलता भी चली आयी थी
और
हवा भी छूकर तुम्हें
अठखेलियाँ करती थी

अयम्मा
एक बात सच-सच बतलाना
क्या तुम्हारे सपनों में
कोई राजकुमार नहीं आया था
कभी भी
घोड़े पर सवार होकर ?
क्या तुम्हारे जीवन में
बसंत की तरुणाई कभी न आयी थी ?
शर्माओ मत अयम्मा...
तुम्हारे जीवन का पतझड़ गवाह है इस बात का
कि
बहार का इठलाता समय
तुम्हारे जीवन की रिमझिम बारिश में
नाचा था मोर बनकर

सुना है अयम्मा
अपनी तरुणाई के दिनों में
तुम
बहादुर तरुणी में शुमार होती थी
मैंने तो यहाँ तक सुना है अयम्मा

कि एक बार
किसी ठाकुर ने भेड़िया बनकर
नोचना चाहा था तुम्हें
लेकिन तुमने उसे उठाकर कैसे
धड़ाम से ज़मीन पर दे मारा था
कितना बवाल मचा था
कि
एक भंगन ने
ठाकुराईसी मूँछें नोंच डाली
यह मात्र श्रम का ऐय्यासी को पछाड़ना भर नहीं था
बल्कि
दलित नारी के प्रतिरोध का महागान था

और अयम्मा
वह दिन तुम कैसे भूल सकती हो
दूर गाँव से आया था तुम्हारा दूल्हा
बन्नो बनी अयम्मा को ब्याहने
कितनी घबरा गयी थी तुम
और उसी घबराहट में
"भैया कैसे हो ?"
कह दिया था अपने दूल्हे को
सब ठहाका लगा हँसे थे जोर से

अयम्मा, एक बात बताओ
तुम तो बचपन से ही
संघर्षी, निडर, विद्रोही और मेहनती रही हो
सभी कुछ तो था तुम्हारे भीतर
फिर क्यूँ
चुपचांप मान लिया था तुमने
असभ्य समाज और जारज कोख से जन्मी
मल-मूत्र उठाती परंपरा को

सास के हिस्से से
तीस घर मिले थे तुम्हें मुँह दिखाई में
ये तीस घर ही तुम्हारी जायदाद थे अयम्मा
अयम्मा
अब तो तुम्हारी बेटी
शारदा भी बड़ी हो गयी है
वह भी तो तुम्हें विरासत में मिले
मल-मूत्र को तो उठाएगी ही ?
तुम उदास क्यों हो गयी अयम्मा
रोती क्यों हो
तुमने भी तो अपनी माँ और सास से
विरासत में मिला पेशा संभाला था
अब शारदा को भी ये सब करने दो अयम्मा
अरे-अरे
तुम मौन क्यों तोड़ती हो
ये तुमने शारदा के कान में क्या कहा है अयम्मा ?
लो शारदा ने भी झाड़ू और टोकरी उठा ली
लो उसने तो मल-मूत्र भी रख लिया है टोकरी में
लेकिन यह शारदा जा कहाँ रही है ?
यह रास्ता तो खतरनाक है अयम्मा
यह रास्ता तो संसद की ओर जाता है
उसे रोको अयम्मा...
उसे रोको...
तुमने उसे क्या सीखा दिया ?
अचानक होंठ तुम्हारे हिलने क्यों लगे अयम्मा
यह तुम क्या कह रही हो... ?

सुनो...
तुम सब सुनो
तुम लोग हत्यारे हो हमारे सपनों के

मेहनत के
हमारी लहलहाती फसलों के
हमारे बसंत के
मैंने बहुत सह लिया
पर शारदा वो सब नहीं करेगी
वो अब नहीं सहेगी
सुनो तुम सब सुनो

मेरे बच्चे अब नहीं सह सकते
वे बदला लेंगे तुमसे
शारदा आ रही है
वह मेरा, मेरे पूर्वजों का ओर मेरे समाज का
हिसाब माँगने आ रही है।

•

2. अभिव्यक्त न होने के ख़तरे

बोलेंगे
तो मारे जाएंगे
नहीं बोले
तो शर्तिया मारे जाएंगे...
तब तो बेहतर है कि
बे-बोले नहीं
बोल के और चिल्लाते-दहाड़ते हुए मारे जाएं...
इससे
मरते वक़्त
ये अफ़सोस तो न रहेगा
कि कभी कुछ बोले क्यूँ नहीं...

•

24. निर्मला पुतुल

[जन्म सन् 1972]

निर्मला पुतुल का जन्म 6 मार्च, 1972 को दुधनी कुरूवा ग्राम जिला दुमका, झारखंड में हुआ था। निर्मला पुतुल एक बहुचर्चित संताली लेखिका, कवयित्री और सोशल एक्टिविस्ट हैं। उनके पिता का नाम सिरील मुरमू और माता का नाम कांदिनी हांसदा है। आसानी से आजीविका पा सकने के लिए नर्सिंग (डिप्लोमा) कोर्स किया। बाद में इग्नू से राजनीति शास्त्र से स्नातक की डिग्री प्राप्त की।

उनका पहला कविता संग्रह 'अपने घर की तलाश' जो कि संताली और हिंदी में प्रकाशित हुआ। 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' से आपको विशेष ख्याति प्राप्त हुई। आदिवासी स्त्री द्वारा कविता के स्वर में अपने अस्तित्व का नगाड़ा बजाने की घटना की तरह देखा गया। 'स्व' की तलाश, पितृसत्तात्मकता के प्रति विद्रोह, आदिवासी समाज और स्त्री की व्यथा-कथा, आदिवासी समाज-व्यवस्था के गुण-दोष तथा कथित सभ्य समाज पर व्यंग्य, कड़ी मेहनत के बावजूद खराब दशा, कुरीतियों, थोड़े लाभ के लिए बड़े समझौते, स्वार्थ के लिए पर्यावरण को नुकशान, शिक्षित आदिवासियों का दिक्कुओं और व्यवसायियों के हाथों की कठपुतली बनना आदि वे स्थितियाँ हैं जो पुतुल की कविताओं के केन्द्र में हैं। इनकी कविताओं का अनुवाद विभिन्न भारतीय भाषाओं में हुआ है। इनकी कविताएँ विभिन्न बोर्ड एवं विश्व-विद्यालयों के पाठ्यक्रम में शामिल हैं। उनके जीवन पर आधारित फिल्म 'बुरू-गारा' को वर्ष 2010 में राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार प्राप्त हुआ।

प्रमुख रचनाएँ

कविता : नगाड़े की तरह बजते शब्द, अपने घर की तलाश में, फूटेगा एक नया विद्रोह, बेघर सपने (2014)

पुरस्कार : साहित्य अकादमी नई दिल्ली द्वारा 'साहित्य सम्मान' 2001, भारतीय भाषा परिषद, कोलकत्ता द्वारा 'राष्ट्रीय युवा पुरस्कार' 2009।

1. बाबा ! मुझे उतनी दूर मत ब्याहना

बाबा !
मुझे उतनी दूर मत ब्याहना
जहाँ मुझसे मिलने जाने खातिर
घर की बकरियाँ बेचनी पड़े तुम्हें
मत ब्याहना उस देश में
जहाँ आदमी से ज्यादा
ईश्वर बसते हों
जंगल नदी पहाड़ नहीं हों जहाँ
वहाँ मत कर आना मेरा लगन

वहाँ तो कतई नहीं
जहाँ की सड़कों पर
मान से भी ज़्यादा तेज दौड़ती हो मोटर-गाड़ियाँ
ऊँचे-ऊँचे मकान
और दुकानें हों बड़ी-बड़ी

उस घर से मत जोड़ना मेरा रिश्ता
जिस घर में बड़ा-सा खुला आँगन न हो
मुर्गे की बांग पर जहाँ होती ना हो सुबह
और शाम पिछवाड़े से जहाँ
पहाड़ी पर डूबता सूरज ना दिखे ।

मत चुनना ऐसा वर
जो पोचाई और हंडिया में
डूबा रहता हो अक्सर
काहिल निकम्मा हो
माहिर हो मेले से लड़कियाँ उड़ा ले जाने में
ऐसा वर मत चुनना मेरी ख़ातिर

जो बात-बात में बात करे लाठी-डंडे की
कोई थारी लोटा तो नहीं
कि बाद में जब चाहूँगी बदल लूँगी
अच्छा खराब होने पर

जो बात-बात में
बात करे लाठी डंडे की
निकाले तीर-धनुष-कुल्हाड़ी
जब चाहे चला जाए बंगाल, आसाम
कश्मीर
ऐसा वर नहीं चाहिए मुझे
और उसके हाथ में मत देना मेरा हाथ
जिसके हाथों ने कभी कोई पेड़ नहीं लगाया
फसलें नहीं उगाई जिन हाथों ने
जिन हाथों ने नहीं दिया कभी किसी का साथ
किसी का बोझ नहीं उठाया

और तो और
जो हाथ लिखना नहीं जानता हो "ह" से हाथ
उसके हाथ में मत देना कभी मेरा हाथ
ब्याहना हो तो वहाँ ब्याहना
जहाँ सुबह जाकर
शाम को लौट सको पैदल
मैं कभी दुःख में रोऊँ इस घाट
तो उस घाट नदी में स्नान करते तुम
सुनकर आ सको मेरा करुण विलाप...
महुआ का लट और
खजूर का गुड़ बनाकर भेज सकूँ संदेश
तुम्हारी ख़ातिर
उधर से आते जाते किसी के हाथ

भेज सकूँ कद्दू-कोहड़ा खेखसा
बरबट्टी
समय-समय पर गोगो के लिए भी
मेला हाट जाते-जाते
मिल सके कोई अपना जो
बता सके घर-गाँव का हाल-चाल
चितकबरी गैया के ब्याने की ख़बर
दे सके जो कोई उधर से गुजरते
उस देश ब्याहना
जहाँ ईश्वर कम आदमी ज़्यादा हों
बकरी और शेर
एक घाट पर पानी पीते हों जहाँ
वहीं ब्याहना मुझे !
उसी के संग ब्याहना जो
कबूतर के जोड़ और पंडुक पक्षी की तरह
रहे हरदम साथ
घर-बाहर खेतों में काम करने से लेकर
रात सुख-दुःख बाँटने तक
चुनना वर ऐसा
जो बजाता हो बाँसुरी सुरीली
और ढोल-मांदर बजाने में हो पारंगत
बसंत के दिनों में ला सके जो रोज़
मेरे जूड़े की ख़ातिर पलाश के फूल
जिससे खाया नहीं जाए
मेरे भूखे रहने पर
उसी से ब्याहना मुझे ।

•

2. क्या तुम जानते हो

क्या तुम जानते हो
पुरुष से भिन्न
एक स्त्री का एकांत
घर-प्रेम और जाति से अलग
एक स्त्री को उसकी अपनी ज़मीन
के बारे में बता सकते हो तुम ।

बता सकते हो
सदियों से अपना घर तलाशती
एक बेचैन स्त्री को
उसके घर का पता ।

क्या तुम जानते हो
अपनी कल्पना में
किस तरह एक ही समय में
स्वयं को स्थापित और निर्वासित
करती है एक स्त्री ।

सपनों में भागती
एक स्त्री का पीछा करते
कभी देखा है तुमने उसे
रिश्तों के कुरूक्षेत्र में
अपने... आप से लड़ते ।

तन के भूगोल से परे
एक स्त्री के
मन की गाँठें खोलकर
कभी पढ़ा है तुमने
उसके भीतर का खौलता इतिहास

पढ़ा है कभी
उसकी चुप्पी की दहलीज़ पर बैठ
शब्दों की प्रतीक्षा में उसके चेहरो को ।

उसके अंदर वंशबीज बोते
क्या तुमने कभी महसूसा है
उसकी फैलती जड़ों को अपने भीतर ।

क्या तुम जानते हो
एक स्त्री के समस्त रिश्ते का व्याकरण
बता सकते हो तुम
एक स्त्री को स्त्री-दृष्टि से देखते
उसके स्त्रीत्व की परिभाषा
अगर नहीं
तो फिर जानते क्या हो तुम
रसोई और बिस्तर के गणित से परे
एक स्त्री के बारे में...।

•

3. आदिवासी स्त्रियाँ

उनकी आँखों की पहुँच तक ही
सीमित होती उनकी दुनिया
उनकी दुनिया जैसी कई-कई दुनियाएँ
शामिल हैं इस दुनिया में
नहीं जानती वे
वे नहीं जानतीं कि
कैसे पहुँच जाती हैं उनकी चीज़ें दिल्ली
जबकि राजमार्ग तक पहुँचने से पहले ही
दम तोड़ देतीं उनकी दुनिया की पगडंडियाँ

26. आशासिंह सिकरवार

[जन्म सन् 1976]

आशा सिंह सिकरवार का जन्म 1 मई, 1976 में एक मध्यवर्गीय परिवार अहमदाबाद, गुजरात में हुआ था। उनकी पैतृक भूमि आगरा उत्तर प्रदेश है। उनके पिता भगतसिंह सिकरवार पेशे से वकील हैं। उनकी माँ का नाम रानी सिंह है वे एक कुशल गृहिणी हैं। आशा सिंह की प्राथमिक शिक्षा अहमदाबाद में ही संपन्न हुई। विद्यालय की शिक्षा के बाद सरदार वल्लभभाई पटेल आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज अहमदाबाद से हिन्दी साहित्य में बी.ए. की डिग्री प्राप्त की। गुजरात विश्वविद्यालय अहमदाबाद से एम.ए. (हिन्दी) एवं एम.फिल. प्रथम कक्षा से उत्तीर्ण की। विवाह और संतान प्राप्ति के लम्बे अन्तराल के बाद पुनः शिक्षा प्रारंभ की और समकालीन कविता के परिप्रेक्ष्य में चंद्रकांत देवताले की कविता विषय पर 2015 में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

आशा सिंह सिकरवार मूलतः कवयित्री हैं इसलिए शिक्षा के साथ साथ साहित्य उनके जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा था। इन्हें बहुत छोटी सी उम्र में कविता के लिए अनेक सम्मान और पुरस्कार प्राप्त हुए। उनकी 'पौ भर उजाले के लिए' और 'पंख वही रह गए बाबा' दोनों कविता पर किशोर काबरा पुरस्कार प्राप्त हुआ है। उनकी कलम निरंतर सक्रिय रही और अनेक काव्य संकलनों और पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित होती रहीं।

प्रमुख रचनाएँ

काव्य : उस औरत के बारे में (2020), स्त्री की गंध (2022)

समीक्षा : उदय प्रकाश की कविता, समकालीन कविता के परिप्रेक्ष्य में चंद्रकांत देवताले की कविता

पुरस्कार : द ब्रिटिश वर्ल्ड रिकॉर्ड्स लंदन, यू.के. कविता के लिए सम्मान पत्र, विश्व हिन्दी शोध संवर्धन, अकादमी वाराणसी द्वारा प्राप्त साहित्य गौरव सम्मान, प्रिंट मीडिया वर्किंग जर्नलिस्ट एसोसिएशन द्वारा अटल रत्न सम्मान भारत 2021 लखनऊ (उ.प्र.)

1. कब होगा अंत

शिकारी रोजाना बदलता है अपनी जगह
निशदिन अनंत प्रलोभन देता है
सुनहरे सपने भर देता है
मछलियों की आँखों में

मछलियाँ फँस जाती हैं जाल में
चल देती हैं उनके साथ

समन्दर में नाव पर
दनदनाता है मछलियों के
खरीद-फरोश का व्यापार
जानता है शिकारी
देश में कहाँ-कहाँ पहुंचानी है
समन्दर पार
किन-किन देशों में

समन्दर में
दिन-रात रोती हैं मछलियाँ
कैद में आँसू पत्थर बन जाते हैं
षडयंत्र से बचने के लिए
उनकी आत्मा छटपटाती है
थक कर दम तोड़ देती है
उनकी कोशिशें
स्वीकार कर लेती हैं दुर्भाग्य
जिन्होंने मछलियों को
काट-काट खाया
अपनी विकृतियों के कोनों से
गर्भगृह को तोड़ा

निचोड़ कर रक्त
मृत्यु-शैया तक पहुँचाया
कौन लाएगा उन्हें कटघरे तक

मछलियाँ मारी जा रही हैं
कूड़ेदान में, नदियों में
चौराहे पर
नालियों और गटरों से
कहाँ-कहाँ नहीं हो रहे शव बरामद
वे पूछतीं हैं
कब होगा अंत

•

2. सनातन काल से स्त्री

माँ अंधी थी हमारी
पिताजी की उंगली पकड़कर
उम्र भर चलतीं रहीं
अगर वे उन्हें रुकने को कहते तो
वे रुक जाती थीं
फिर चल देतीं
उन्हीं के पीछे-पीछे
कभी नहीं गयीं
कहीं अकेली वे
कभी नहीं सोंचती थीं
अपने बारे में
कभी नहीं किया कुछ
अपने मन का
और कुछ बोलीं भी नहीं उमर भर
हमेशा परेशान रहतीं हैं

अपनी आँखोंवाली बेटियों के लिए

हम सब खिलखिला कर
हँसते हुए उनसे लिपट जाते
तब कहतीं हँसो मत
तुम्हारी हँसी गूंजती है
मेरे भीतर ब्रह्माण्ड में
और मैं सोते-सोते जाग पड़ती हूँ
हमारे जगने पर हैरान है माँ।
हमारे सपनों को रोज मांजती है
रोजाना धोती है हमारी आखें
सँभालती हैं हमारी किताबें
नसीहत देते-देते अचानक
रुंध जाता उनका गला
भर आती हैं आखें
उनके आँसू पोछते हुए हम
प्रण करते हैं हमारी पुस्तकों
को नहीं होने देगे अंधी
तमाम अंधेरों में
माँ की दी गई रोशनी में
चलते चले जायेंगे हम
ढूँढ लेंगे अपने लिए
एक सुरक्षित जहान
लडेंगे तमाम लड़ाइयां
जो माँ न लड़ सकीं
और वहाँ तक
चलते चले जायेंगे हम
जहाँ सनातन काल से
रोती हुई स्त्री इन्तजार कर रही है

उसका रुदन अकेला नहीं है अब
यह रुदन धीरे-धीरे कोलाहल में
परिवर्तित हो रहा है

•

3. अकेलेपन में

जब उठने लगे मन में प्रश्न
जब भरने लगा भीतर अंधेरा
एक दिन बिजली कौंधी मस्तिष्क में
तब से ही मैंने अकेलेपन को
अपना हमसफ़र बना लिया
अब नहीं था 'डर'
दुनिया में अकेले रह जाने का

उसी के सामने जलती रही दिन-रात
उसी ने देखा मेरा जलना
मेरा कोयला होना
मेरा राख़ हो जाना
कभी गीली लकड़ियों में
आग नहीं बस पायी थी
अधजली देर तक देती रही धुआँ
अनदेखी जिंदगी
एक बोझ बन गयी
चल पड़ी, आत्मदाह के रास्ते
नहीं थे मेरे लिए
मेरे आँचल में ममता का दूध था
ताज़ा फूलों की निश्छल हँसी थी
मेरे दामन में
जबकि तकदीर में